

वेदान्तडिण्डिम

हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक :—

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ

श्री १०८ स्वामी विष्णुदेवानन्दगिरिजी महाराज

के चरण कमल चञ्चरीक

स्वामी नारायण गिरि

प्रकाशक :

श्री कैलास आश्रम शताब्दीसमारोह महासमिति

मुनि-की-रेती, ऋषिकेश

(हिमालय)

द्वितीयावृत्ति] सम्वत् २०३७ [मूल्य 5/2

(182)

ॐ

प्रस्तावना

अनादि काल से सभी प्राणियों के हृदय में यही नैसर्गिक अभिलाषा रही है कि हम सम्पूर्ण दुःखों से सर्वथा छूट जायें और परमानन्द को प्राप्त कर लेवें। कारण सहित समस्त दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति सहित परमानन्द की प्राप्ति को वेदान्त में मोक्ष की संज्ञा दी गयी है। ऐसे मोक्ष की अभिलाषा वाले पुरुष को मुमुक्षु कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मोक्ष प्राणिमात्र को अभीष्ट है; भले ही मोक्ष नाम से न कहें किन्तु उसकी आकांक्षा सभी किसी को है। यों तो धर्म, अर्थ एवं कामरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति में भी लोग लगे हुए देखे जाते हैं किन्तु वे उनके अन्तिम लक्ष्य नहीं हैं। सकाम भाव से धर्मानुष्ठान, अर्थ और काम का उपस्थापक होता है एवं निष्काम भाव से किया हुआ धर्मानुष्ठान अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा मुमुक्षा उत्पत्ति में हेतु माना गया है। अर्थरूप पुरुषार्थ का मुख्य तात्पर्य धर्म सम्पादन है; काम नहीं है क्योंकि धर्मानुष्ठान् से सुख के लौकिक साधनों की उपस्थिति होती है, जिसे अर्थ शब्द से कहा जाता है। वैसे ही वैषयिक सुख को काम कहते हैं। इस कामका तात्पर्य भी शरीर रक्षार्थ जीवन निर्वाह ही मुख्य माना गया है। इन्द्रिय तृप्ति काम का गौण प्रयोजन है। इन तीनों पुरुषार्थों को अनित्य कहा गया है किन्तु मोक्ष नित्य-निरतिशय होने से परमपुरुषार्थ कहा गया है। मोक्ष का साधन ब्रह्मज्ञान है और ब्रह्मज्ञान का साधन वेदान्त का श्रवण, मनन एवं निदिध्यासनरूप ब्रह्मविचार है।

अति गम्भीर होने के कारण वेदान्त के तात्पर्य का अवगाहन करना सर्वसाधारण व्यक्ति के लिये दुःशक्य है। इसीलिये वेदान्त का तात्पर्य-बोधक-प्रकरण-ग्रन्थ का निर्माण भगवत्पाद आचार्य शङ्कर एवं उनके परवर्ति आचार्यों ने भी किया है।

वेदान्तडिण्डम का परिचय

प्रकरण ग्रन्थ अनेकों हैं किन्तु सरल सुबोध और सर्वसाधारण जिज्ञासुओं को वेदान्त के गम्भीर तत्त्व को अवगाहन कराने वाले कुछ ही प्रकरण ग्रन्थ हैं जिनमें 'वेदान्त-डिण्डिम' अति उत्तम ग्रन्थ माना गया है। इसके रचयिता श्रीमन् नरसिंह सरस्वती हैं, इस प्रकार विद्वानों में प्रसिद्धि है। कुछ विद्वान् भगवान् भाष्यकारों को इसके रचयिता मानते हैं। उसका आधार आचार्य रचित 'ब्रह्मज्ञानावल्लीमाला' निबन्ध में कुल चार श्लोक वैसे ही मिलते हैं। जिसके आधार पर वैसी धारणा सम्भव हो जाती है कि इसके रचयिता आद्य शङ्कराचार्य हो सकते हैं, किन्तु भाष्यकार की भाषाशैली और वेदान्तडिण्डिम की भाष शैली विलक्षण है। अतः इस ग्रन्थ के रचयिता आद्य शङ्कराचार्य को मानना सन्देहास्पद है। इतनी बात अवश्य है कि यह प्रकरण ग्रन्थ वेदान्त के तात्पर्य अवगाहन कराने में मुमुक्षुओं के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

अनुवाद एवं अनुवादक का परिचय

यद्यपि वेदान्तडिण्डिम अत्यन्त सरल संस्कृत भाषा में है तथापि संस्कृत भाषा अनभिज्ञ वेदान्त विचार के अधिकारी मुमुक्षुओं के हित के लिये उसका हिन्दी भाषा में अनुवाद करना आवश्यक था जिसकी पूर्ती श्रीमत्स्वामी नारायण गिरि जी महाराज, वेदान्ताचार्य ने की है।

भारत के बंगाल प्रदेश में सम्भ्रान्त संस्कृत परिवार में आपका जन्म हुआ था। वंश परम्परा के अनुसार आंग्लशिक्षा आपको दी गयी और उसमें आपने एम०बी०बी०एस० एवं एम०एस० परीक्षोत्तीर्ण होकर सिविल सर्जन पदपर कई वर्षों तक काम किया। इस विषय में आपने अच्छी ख्याति प्राप्त की। फिर भी आपमें धार्मिक एवं अध्यात्मिक रुचि नहीं थी। आप ईश्वर और पुनर्जन्म को नहीं मानते थे। जीवन की एक घटना ने आपकी नास्तिकता को चूर-चूर कर परम आस्तिक बना दिया। यहां तक कि गृहस्थ जीवन से सर्वथा उपराम करा डाला। कुछ भक्तों के मध्य में अपनी जीवन घटना सुनाते हुए आपने अपने मुख से कहा था कि हमारी एक बहिन थी जिसके पेट में फोड़ा था और जिसका सफल आपरेशन हमने अपने हाथों से किया। आपरेशन के बाद अस्पताल से प्रसन्नचित्त हम अपने निवास स्थान पहुँचे। अभी हम स्नान ही कर रहे थे इतने में पीछे से सन्देश आया कि जिसका आपरेशन आपने किया था वह आपकी सगी-बहन दिवंगत हो गयी। इस सन्देश को सुनते ही स्वामी नारायण गिरी जी के हृदय में विचित्र प्रेरणा हो गयी कि अब तक हमें डाक्टरों को सब कुछ समझते थे किन्तु आज इस घटना से यह निश्चित हो गया कि डाक्टर ही सब कुछ नहीं है; इनके ऊपर जगत्स्रष्टा परमेश्वर है जो संसार की सृष्टि-पालन संहार तथा प्राणियों के कर्मफलका विधान करने वाला है। बस रात दिन आपके मन में यही चिन्ता होने लग गयी। नास्तिकता आस्तिकता के रूप में बदल गयी। घर, परिवार, पद, प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य निःसार प्रतीत होने लग गये। अहोरात्र उस जगत्स्रष्टा का चिन्तन होने लग गया। कुछ दिनों के बाद सम्पूर्ण सांसारिक झंझटों से उपरत हो आपने

उत्तराखण्ड की शरण ली। उत्तराखण्ड हिमालय के उपत्यका में प्राचीनतम ऋषिकेशस्थ कैलासाश्रम के दिव्य विभूति विद्यावाचस्पति महामण्डलेश्वर अनन्त श्री स्वामी विष्णु देवानन्द गिरि जी महाराज के चरणों में आप आये। धीरे-धीरे उनकी कृपा के पात्र आप बन गये। कुछ काल तक गङ्गा किनारे कर्णवास में भी आप रहे। ऋषिकेश कैलास आश्रम में आने पर आपने अपने पूर्व योग्यता का परिचय किसी को नहीं दिया। आश्रम के प्रबन्धक भी आपसे अपरिचित होने के कारण सर्वसामान्य साधु के समान ही आपको समझते थे और वैसे ही आपके साथ व्यवहार करते थे। एक दिन किसी रुग्ण सन्त को देखने के लिये डाक्टर आया था। उस डाक्टर ने रोगी के रोग का निदान तथा कुछ उपचार बतलाया। उसी समय आप कुछ बोल पड़े जिसे सुनकर डाक्टर आश्चर्य चकित रह गया और आपके साथ पहले हिन्दी भाषा में पश्चात् आंग्ल भाषा में बात की। बस क्या कहना था, उसी समय आपका परिचय सबको मिल गया और तब से आप "डाक्टर स्वामी" इस नाम से प्रसिद्ध हो गये। कैलास आश्रम के सन्त एवं भक्त ही नहीं बल्कि पूरे सन्यासी समाज कैलास आश्रम के डाक्टर स्वामी नाम से आपको पुकारते थे। "स्वामी नारायण गिरी" इस नाम से थोड़े ही व्यक्ति आपको सम्बोधित करते थे। अपने सद्गुरूदेव महामण्डलेश्वर अनन्त श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द जी के प्रति आपके मन में अगाध श्रद्धा थी। आप अपने को उनके चरणों में समर्पित मानते थे। इसीलिये श्री बड़े महाराज की डा० स्वामी जी के प्रति अपार करुणा थी। आपने प्रथमा परीक्षा से लेकर आचार्य परीक्षा पर्यन्त विधिवत् अध्ययन किया। कई वर्षों तक वाराणसी में रहकर व्याकरण, न्याय, मिमांसा तथा वेदान्तादि शास्त्रों का

अध्ययन किया। अधिकतर आपका अध्ययन कैलास आश्रम के पूज्य श्री बड़े महाराज के सान्निध्य में हुआ। अध्ययन के पश्चात कैलास आश्रम में रहकर कई वर्षों तक आपने अध्यापन कार्य भी किया। अध्ययनशील सन्तों के प्रति आपका अधिक स्नेह था। ऐसे महात्माओं को अपने ओर से भी आर्थिक सहयोग किया करते थे, और पढ़ाते थे। कैलास आश्रम एवं यहां के सन्तों तथा भक्तों की आपसे बहुत कुछ आशाएँ थी जो आपके आकस्मिक निधन से पूरी नहीं हो सकी। आपके ब्रह्मलीनता के पश्चात् पूज्य श्री बड़े महाराज के मन में अत्यन्त कष्ट हुआ जैसे पुत्र के वियोग में पिता रोता हो वैसे ही आपके वियोग में एक बार फूट-फूट रोते हुए श्री बड़े महाराज को लोगों ने देखा। धन्य है गुरु शिष्य का सम्बन्ध। अब भी प्रतिवर्ष आपके पुण्यतिथी गङ्गा सप्तमी (वैशाख शुक्ला सप्तमी) को आपका निर्वाण दिवस-महोत्सव कैलास आश्रम में मनाया जाता है! जिसमें आपके साधुस्वभाव वैदुष्य एवं निष्ठा की भूरी-भूरी प्रशंसा लोग करते हैं।

ऐसे सुयोग्य निष्ठावान् विद्वान के द्वारा किया गया वेदान्तडिण्डिम का अनुवाद सभी पाठकों के हृदय में वेदान्त निष्ठा का सञ्चार करेगा ऐसा हमारा विश्वास है। इसका प्रथम संस्करण ई० १९६० में अनुवादक के जीवनकाल में छपा था जो बहुत शीघ्र ही समाप्त हो गया। तब से पाठकों की ओर से सानुवाद वेदान्तडिण्डिम की मांग बार-बार आती रही।

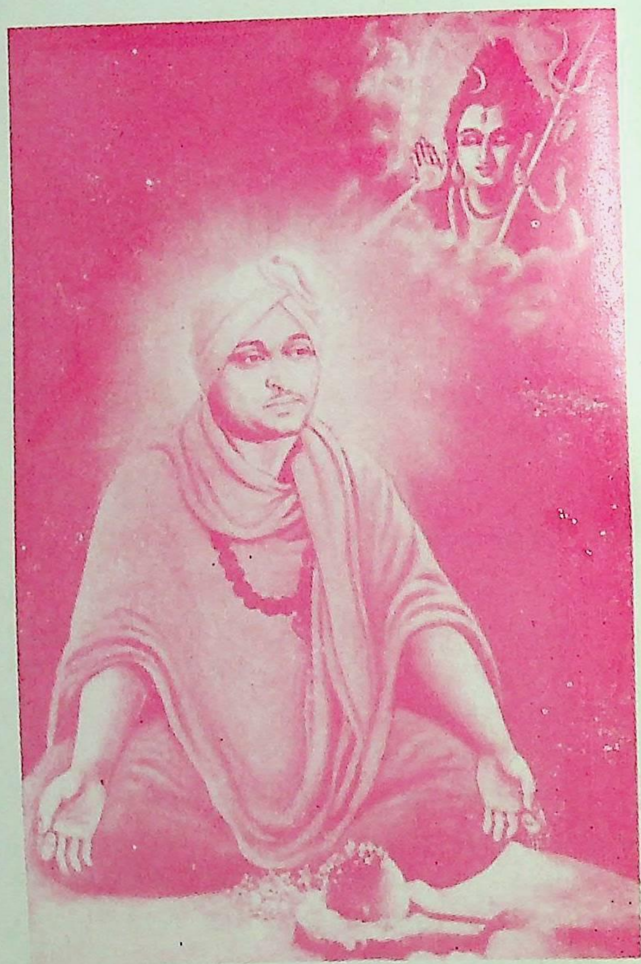
कैलास आश्रम शताब्दी महोत्सव प्रसङ्ग पर इस द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है। जहां हम पूर्व महापुरुषों की कीर्ती का संरक्षण एवं

संस्मरण करना आवश्यक समझते हैं, वहाँ इस सानुवाद वेदान्तडिण्डिम के प्रकाशन से वेदान्त की सेवा तथा पाठकों की जिज्ञासा की पूर्ती भी कुछ हो ही जावेगी। आशा है इस सानुवाद वेदान्तडिण्डिम को पढ़कर मुमुक्षुजन आत्मज्ञान लाभकर जीवन को कृत-कृत्य बनायेंगे।

इत्यों शम्।

भगवत्पारीयः
महामण्डलेश्वर
स्वामी विद्यानन्दगिरि
श्री कैलास आश्रम, ऋषिकेश

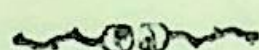
कार्तिक पूर्णिमा
वि० सं० २०३८



स्वामी नारायण गिरि जी महाराज
कैलास आश्रम, ऋषिकेश



वेदान्तडिण्डिमः



वेदान्तडिण्डिमास्तत्त्वमेकमुद्घोषयन्ति यत् ।
आस्तां पुरस्तात्तत्तेजो दक्षिणामूर्तिसंज्ञितम् ॥१॥

नत्वा सदाशिवं साम्बं
विद्यावाचस्पतिं गुरुम् ।
वेदान्तडिण्डिमश्लोका
व्याख्यायन्ते यथामति ॥

वेदान्तशास्त्ररूपी डिण्डिम (ढंढोरे) जिस अद्वितीय तत्त्वकी घोषणा कर रहे हैं वह दक्षिणामूर्तिनामवाले परम तत्त्व, वक्ता तथा श्रोता के सम्मुख उपस्थित रहे अर्थात् अपरोक्षतया इन दोनों के ज्ञान का विषय हो जावे ।

इस आशीर्वाद तथा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण में ग्रन्थकार ने परमतत्त्व को "दक्षिणामूर्ति" नाम वाला कहा है । इसका रहस्य यह है कि दक्षिणामूर्ति भगवान् शंकर का नाम है। शंकर वस्तुतः नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव परब्रह्मस्वरूप हैं; वे ही परमतत्त्व हैं । मायाविशिष्ट होकर वे ही जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय का कर्ता बनते हैं और पुनः भक्तों के प्रति अनुग्रह करके उनके जप-पूजादि के लिये अपनी माया से शरीर बनाकर उमापति, नीलकण्ठ इत्यादि रूप को धारण करते हैं—

तमादि मध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिम्
समस्तसाक्षिणं तमसः परस्तात्—

(कैवल्योपनिषत्)

इत्यादि उपनिषद्वचन इसमें प्रमाण हैं ।

किसी समय सदाशिव ने युवावेश धारण कर दक्षिण दिशा में मुख करके सनकादि ऋषियों को परमतत्त्व का उपदेश किया था; जिससे वे ऋषि स्वरूप के विषय में संशय रहित हो गये थे। दक्षिण दिशा में मुख करके उपदेश देने के कारण भगवान् शंकर का एक नाम दक्षिणामूर्ति भी है—जिसका उल्लेख ग्रन्थकर्ता ने मंगलाचरण में किया है ।

श्री दक्षिणामूर्ति का यह भी अर्थ है कि यह परमतत्त्व अपनी "श्री" अर्थात् माया से युक्त होकर जगदादि की सृष्टि में "दक्षिण" अर्थात् कुशल होता है परन्तु परमार्थतः, "निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्" "अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्" "अस्थूलमनणु" इत्यादि श्रुति प्रमाणों से, "अमूर्ति"—शरीरादिरहित अखण्ड एकरस सच्चिदानन्दस्वरूप है—इसलिये उस परमतत्त्व को "श्रीदक्षिणामूर्ति"—इस नाम से कहा जाता है। वेदान्तडिण्डिमकार ने अन्तिम मंगलाचरण से श्रीमद्दक्षिणामूर्ति इस शब्द का ही प्रयोग किया है ।

अतः "दक्षिणामूर्ति" उस परमतत्त्व का ही नामान्तर है ॥१॥

आत्मानात्मपदार्थौ द्वौ भोक्तृ-भोग्यत्वलक्षणौ ।
ब्रह्मैवात्मा न देहादिरिति वेदान्तडिण्डिमः ॥२॥

भोक्ता तथा भोग्यरूप, आत्मा और अनात्मा, ये दो ही पदार्थ हैं। इसमें ब्रह्म ही आत्मा है; देहादि आत्मा नहीं है—यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥२॥

ज्ञानाज्ञाने पदार्थौ द्वावात्मनो बन्धमुक्तिदौ ।
ज्ञानान्मुक्तिर्निबन्धोऽन्यदिति वेदान्तडिण्डिमः ॥३॥

ज्ञान और अज्ञान ये दो पदार्थ हैं, जो आत्मा के बन्धमोक्ष के हेतु हैं। इसमें ज्ञान से तो मुक्ति मिलती है और दूसरे से जीव बद्ध हो जाता है। "ज्ञानादेव तु कैवल्यम्" यह वचन इसमें प्रमाण है, यह वेदान्त की घोषणा है ॥३॥

ज्ञातृज्ञेयौ पदार्थौ द्वौ भास्यभासकलक्षणौ ।
ज्ञातृ ब्रह्म जगज्ज्ञेयमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४॥

ज्ञाता और ज्ञेय ये दो भास्य-भासकात्मक पदार्थ हैं। इसमें ब्रह्म ज्ञाता और जगत् ज्ञेय है। ब्रह्म प्रकाशस्वरूप होने से सब पदार्थों का अवभासक है और जड़ जगत् प्रपञ्च उसका भास्य अर्थात् प्रकाश्य है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४॥

सुखदुःखे पदार्थौ द्वौ प्रियविप्रियकारकौ ।
सुखं ब्रह्म जगद्दुःखमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥५॥

सुख और दुःख दो पदार्थ हैं जो प्रिय और अप्रिय अर्थात् इष्ट और अनिष्ट कारक हैं। इसमें सुख तो

ब्रह्मस्वरूप है और जगत् दुःखस्वरूप है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५॥

समष्टिव्यष्टिरूपौ द्वौ पदार्थौ सर्वसम्मतौ ।
समष्टिरीश्वरो व्यष्टिर्जीवो वेदान्तडिण्डिमः ॥६॥

यह सर्वसम्मत है कि समष्टि तथा व्यष्टि रूप दो पदार्थ हैं। जिसमें सबका समावेश उसको समष्टि और अलग-अलग पदार्थों को व्यष्टि कहा जाता है। ईश्वर ही समष्टि और जीव व्यष्टि है। यह वेदान्त की घोषणा है ॥६॥

ज्ञानं कर्म पदार्थौ द्वौ वस्तु-कर्त्रात्मतन्त्रकौ ।
ज्ञानान्मोक्षो न कर्मभ्य इति वेदान्तडिण्डिमः ॥७॥

ज्ञान और कर्म दो पदार्थ हैं। ज्ञान वस्तुतन्त्र और कर्म कर्तृतन्त्र है। जो पदार्थ अपनी उत्पत्ति में केवल अनुकूल वस्तु की अपेक्षा रखता है, कर्ता की इच्छा की अपेक्षा नहीं रखता वह पदार्थ वस्तुतन्त्र है और जो पदार्थ कर्ता की इच्छा और प्रयत्न से ही उत्पन्न होता है, वह कर्तृतन्त्र है। इन्द्रियादि प्रमाण तथा घटादि प्रमेय के सम्बन्ध होने से अवश्य ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, चाहे जानने वाले की जानने की इच्छा हो या न हो; परन्तु यज्ञादि कर्म पूर्णतया कर्ता यजमान के अधीन है। यजमान कर भी सकता है, नहीं भी कर सकता या विपरीत भी कर सकता है। वेदान्त प्रमाण से उत्पन्न ज्ञान से ही मोक्ष होता है; यज्ञादि कर्म से नहीं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥७॥

श्रोतव्याश्राव्यरूपौ द्वौ पदार्थौ सुखदुःखदौ ।
श्रोतव्यं ब्रह्म नैवान्यदिति वेदान्तडिण्डिमः ॥८॥

सुनने के योग्य तथा सुनने के अयोग्य इस प्रकार, सुख और दुःख को देने वाले दो पदार्थ हैं। इसमें सुनने के योग्य तो ब्रह्म ही है; इससे भिन्न अनात्म पदार्थ सुनने के योग्य नहीं है। "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्य......" यह श्रुति इसमें प्रमाण है। यह वेदान्त की घोषणा है ॥८॥

चिन्त्याचिन्त्ये पदार्थौ द्वौ विश्रान्तिभ्रान्तिदायकौ।
चिन्त्यं ब्रह्म परं नान्यदिति वेदान्तडिण्डिमः ॥९॥

शान्ति तथा विक्षेप के हेतु चिन्त्य और अचिन्त्य ये दो पदार्थ हैं। इसमें चिन्त्य अर्थात् मनन करने के योग्य तो परब्रह्म ही है; दूसरा नहीं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥९॥

ध्येयाध्येये पदार्थौ द्वौ धीसमाध्यसमाधिदौ।
ध्यातव्यं ब्रह्म नैवान्यदिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१०॥

ध्येय तथा अध्येय दो पदार्थ हैं, जो बुद्धि को समाहित और विक्षिप्त करते हैं। इसमें ध्यान के योग्य तो ब्रह्म ही है; दूसरा नहीं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥१०॥

योगिनो भोगिनो वापि त्यागिनो रागिणोऽपि च।
ज्ञानान्मोक्षो न सन्देह इति वेदान्तडिण्डिमः ॥११॥

ज्ञान के बाद प्रारब्धानुसार ज्ञानी की प्रवृत्ति चाहे योग में हो या भोग में, त्याग में हो या सांसारिक पदार्थ-विषयक राग में, ज्ञान हेतुक मोक्ष तो उनको हो ही जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह ही वेदान्त का निर्घोष है। कहने का मतलब यह है कि ज्ञान के पश्चात् ज्ञानी का व्यवहार

भले कैसा ही हो; ज्ञान में कोई कमी या परिवर्तन नहीं आता है। इसमें वृद्ध-सम्मति भी है कि—

कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी नृपौ जनकराघवौ।
वसिष्ठः कर्मकर्ता च ज्ञानिनस्ते सदा समाः॥

भगवान् कृष्ण भोगी (आपात दृष्टि से); शुकदेव जी त्यागी, राजा जनक तथा रामचन्द्र जी राज्यानुरागी और वसिष्ठ जी कर्मयोगी थे किन्तु ज्ञानीरूप से वे सब बराबर ही थे; किसी में ज्ञान की न्यूनता या अधिकता नहीं थी। यह ही वेदान्तशास्त्र की घोषणा है ॥११॥

न वर्णाश्रमसंकेतैर्न कर्मोपासनादिभिः।
ब्रह्मज्ञानं बिना मोक्ष इति वेदान्तडिण्डिमः ॥१२॥

ब्रह्मज्ञान के विना वर्णाश्रमधर्म के पालन से कर्म अथवा उपासना से ही मोक्ष नहीं होता है। "न कर्मणा न प्रजया धनेन……" इत्यादि श्रुतियों का यह ही कहना है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥१२॥

असत्यः सर्वसंसारो रसाभासादिदूषितः
उपेक्ष्यो ब्रह्मविज्ञेयमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१३॥

सम्पूर्ण संसार असत्य है, रसाभासादि अर्थात् कल्पित सुखादियों से, वास्तव दुःखादियों से दूषित है, इसलिये यह संसार या सारे सांसारिक सुख उपेक्ष्य हैं, अनादर के पात्र हैं, ब्रह्म ही जानने के योग्य है। यह वेदान्त की घोषणा है ॥१३॥

वृथाक्रिया वृथालापान् वृथावादान् मनोरथान्।
त्यक्त्वैकं ब्रह्म विज्ञेयमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१४॥

अनावश्यक कर्म, निरर्थक वार्तालाप, निष्फल वाद-विवाद और वृथा सङ्कल्प-विकल्पादियों को छोड़ कर ब्रह्म को ही जानना चाहिये, क्योंकि केवल वह ही जानने योग्य पदार्थ है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥१४॥

स्थितो ब्रह्मात्मना जीवो ब्रह्म जीवात्मना स्थितम् ।
इति संपश्यतां मुक्तिरिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१५॥

जीव ही ब्रह्मरूप से और ब्रह्म ही जीवरूप से स्थित है—इस प्रकार अपरोक्षतया अनुभव करने वालों की ही मुक्ति होती है। "सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। संपश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना" सर्वभूत प्राणियों में आत्मा को और आत्मा में ही सर्वभूत प्राणियों को स्थित देखने वाला परमब्रह्म को ही प्राप्त हो जाता है, ब्रह्म प्राप्ति का और अन्य साधन नहीं है; यह कैवल्य श्रुति कहती है। यह ही वेदान्त शास्त्र का निर्घोष है ॥१५॥

जीवो ब्रह्मात्मना ज्ञेयो ज्ञेयं जीवात्मना परम् ।
मुक्तिस्तदैक्यविज्ञानमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१६॥

जीव को ही ब्रह्मस्वरूप तथा परब्रह्म को ही जीवस्वरूप जानना चाहिये। इन दोनों की एकता अर्थात् अभेद-ज्ञान ही मुक्ति है। यद्यपि जीव और ब्रह्म के अभेद का ज्ञान मुक्ति का साधन है और मुक्ति साध्य है तथापि साध्य-साधन का औपचारिक अभेद मान कर इस प्रकार कहा गया है। जैसे कहा जाता है कि "धनं सुखम्" धन ही सुख है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥१६॥

सर्वात्मना परं ब्रह्म श्रोतुरात्मतया स्थितम् ।
नायासस्तत्त्वविज्ञप्ताविति वेदान्तडिण्डिमः ॥१७॥

सब प्राणियों का आत्मस्वरूप होने से परब्रह्म अधिकारी श्रोता का भी आत्मारूप से ही स्थित है। इसलिये उस आत्मतत्त्व के ज्ञान के लिये प्रयत्न विशेष की आवश्यकता नहीं है। आत्मा से भिन्न घटपटादि पदार्थों के ज्ञान के लिये विशेष प्रयत्न या परिश्रम की आवश्यकता है। "मैं हूँ" इस प्रकार से आत्मतत्त्व तो सबको अनायास ही ज्ञात हो रहा है। यह ही वेदान्त शास्त्र का निर्घोष है ॥१७॥

ऐहिकं चामुष्मिकं च तापान्तं कर्मसञ्चयम् ।
त्यक्त्वा ब्रह्मैव विज्ञेयमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१८॥

इस लोक के अथवा परलोक के लिये किये हुए सब कर्म का अन्त अर्थात् अन्तिम परिणाम तो दुःख ही है। इसलिये भोगप्रद कर्म को त्याग करके ब्रह्म को ही जानना चाहिये। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥१८॥

अद्वैतद्वैतवादौ द्वौ सूक्ष्मस्थूलदशां गतौ ।
अद्वैतवादान्मोक्षः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१९॥

स्थूल दृष्टि से द्वैतसिद्धान्त ही ठीक प्रतीत होता है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से अद्वैतवाद ही युक्ति से सिद्ध होता है। जीव ब्रह्म के अभेद रूप अद्वैत के ज्ञान से ही मोक्ष होता है। यह ही वेदान्त का निर्घोष है ॥१९॥

कर्मिणो विनिवर्तन्ते निवर्तन्त उपासकाः ।
ज्ञानिनो न निवर्तन्त इति वेदान्तडिण्डिमः ॥२०॥

कर्मि लोगों को स्वर्गादि भोग के बाद पुनः शरीर धारण करने के लिये लौटना पड़ता है। उपासकों को भी लौटना पड़ता है, परन्तु इस शरीर के शान्त होने के अनन्तर ज्ञानियों को लोकान्तर में जाना और वहाँ से पुनः शरीर धारण करने के लिये लौटना नहीं पड़ता है। "न च पुनरावर्तते" वह पुनः नहीं लौटता, यह श्रुति इसमें प्रमाण है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥२०॥

परोक्षासत्फलं कर्म ज्ञानं प्रत्यक्षसत्फलम् ।
ज्ञानमेवाभ्यसेत्तस्मादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥२१॥

यज्ञ-दानादि कर्म स्वर्गादि परोक्ष तथा अनित्य फल देने वाले हैं। भोग के बाद स्वर्ग से च्युत होना ही पड़ेगा। किन्तु ज्ञान का फल प्रत्यक्ष तथा नित्य है, क्योंकि ज्ञान विद्वान् के अपने अनुभव विषय बनने वाले मोक्ष का साधन है। इसलिये ज्ञान अर्थात् आत्मसाक्षात्कार के लिये ही अभ्यास करना चाहिये। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥२१॥

वृथा श्रमोऽयं विदुषां वृथाऽयं कर्मिणां श्रमः ।
यदि न ब्रह्मविज्ञानमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥२२॥

यदि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति न हो, तो विद्वानों का या कर्मियों का यह परिश्रम व्यर्थ ही है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥२२॥

अलं यागैरलं योगैरलं भोगैरलं धनैः ।
परस्मिन् ब्रह्मणि ज्ञात इति वेदान्तडिण्डिमः ॥२३॥

परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् याग, योग

या धनादि की और कोई आवश्यकता नहीं रहती है। यह ही वेदान्त शास्त्र का निर्घोष है ॥२३॥

अलं वेदैरलं शास्त्रैरलं स्मृतिपुराणकैः।
परमात्मनि विज्ञात इति वेदान्तडिण्डिमः ॥२४॥

परमात्मा को जान लेने के अनन्तर वेद-शास्त्र-स्मृति पुराणादि सब निष्प्रयोजन हो जाते हैं क्योंकि उनको जानने के लिये ही तो ये सब हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥२४॥

नर्चा न यजुषार्थोऽस्ति न साम्नार्थोऽस्ति कश्चन।
जाते ब्रह्मात्मविज्ञान इति वेदान्तडिण्डिमः ॥२५॥

ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाने के बाद ऋग्वेद, यजुर्वेद या सामवेद का कोई प्रयोजन नहीं रहता है। वेदान्त शास्त्र की यह ही घोषणा है ॥२५॥

कर्माणि चित्तशुद्ध्यर्थमैकाग्र्यार्थमुपासनम्।
मोक्षार्थं ब्रह्मविज्ञानमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥२६॥

कर्म तो चित्त की शुद्धि के लिये है, उपासना चित्त की एकाग्रता के लिये है और ब्रह्मज्ञान तो मोक्ष के लिये है। जैसे कि निर्मल तथा स्थिर दर्पण में ही मुख का स्पष्ट प्रतिबिम्ब अनुभव किया जाता है, उसी प्रकार निष्काम कर्मद्वारा मल तथा उपासना द्वारा विक्षेप अर्थात् चञ्चलता को दूर करने के बाद ही उस निर्मल और एकाग्र चित्त में परमात्मा का साक्षात्कार होता है। यह ही वेदान्त का निर्घोष है ॥२६॥

संचितागामिकर्माणि दह्यन्ते ज्ञानवह्निना।
प्रारब्धानुभवान्मोक्ष इति वेदान्तडिण्डिमः ॥२७॥

ज्ञानरूप अग्नि द्वारा सञ्चित और आगामी कर्म दग्ध हो जाते हैं और भोग से प्रारब्ध का क्षय होने के अनन्तर विदेहमुक्ति हो जाती है। ज्ञान से अज्ञान के नाश के बाद भी लेश अविद्या प्रारब्धक्षय तक रह जाती है। इसलिये ज्ञानी को भी अपना प्रारब्ध भोगना पड़ता है। वह दशा जीवनमुक्ति की दशा कही जाती है, प्रारब्ध को भोग लेने के अनन्तर ज्ञानी विदेहमुक्त हो जाते हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥२७॥

न पुण्यकर्मणा वृद्धिर्न हानिः पापकर्मणा ।
नित्यासङ्गात्मनिष्ठानामिति वेदान्तडिण्डिमः ॥२८॥

अविनाशी असङ्ग आत्मतत्त्व में ही निष्ठा अर्थात् स्थिति वाले पुरुषों का पुण्य कर्म से कोई लाभ या पाप कर्म से कोई हानि नहीं है। कमल के पत्ते में स्थित जल के समान उनमें कर्मों का कोई लेप नहीं लगता है। यह ही वेदान्त शास्त्र की घोषणा है ॥२८॥

दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ ।
दृग्ब्रह्म दृश्यं माया स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥२९॥

दृक् और दृश्य ये दो परस्पर एक दूसरे से भिन्न पदार्थ हैं। इसमें ब्रह्म तो दृक् है और माया दृश्य है। दृक् प्रकाशरूप है और दृश्य जड़ है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥२९॥

अविद्योपाधिको जीवो मायोपाधिक ईश्वरः ।
मायाविद्यागुणातीत इति वेदान्तडिण्डिमः ॥३०॥

जीव अविद्यारूप उपाधिवाला है। ईश्वर मायारूप उपाधिवाला है। अविद्या मलिनसत्त्वगुण-प्रधान होने से उससे

विशिष्ट जीव अल्पज्ञ और अल्प-शक्तिमान् हो गया और माया शुद्धसत्वगुण-प्रधान होने से तद्विशिष्ट मायापति ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् है। त्रिगुणात्मिका इस माया और अविद्या से रहित शुद्ध चैतन्य ही परब्रह्म है। यह ही वेदान्त शास्त्र का उद्घोष है ॥३०॥

बुद्धिपूर्वाऽबुद्धिपूर्वकृतानां पापकर्मणाम् ।
प्रायश्चित्तमहोज्ञानमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥३१॥

जानकर (ज्ञात) या अनजान में (अज्ञान) किए गए सर्व पापों का प्रायश्चित्त तो एकमात्र ब्रह्मज्ञान ही है क्योंकि वह ब्रह्मज्ञान ही सर्व कर्म को भस्म कर देता है। गीता में भगवान् ने यह ही उपदेश अर्जुन को दिया कि "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते···" इति। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३१॥

साकारं च निराकारं निर्गुणं च गुणात्मकम् ।
तत्त्वं तत्परमं ब्रह्म इति वेदान्तडिण्डिमः ॥३२॥

साकार या निराकार, सगुण, या निर्गुण, चाहे किसी रूप से उनका वर्णन क्यों न करो, वास्तव तत्त्व तो वह परब्रह्म ही है। उपाधि के सम्बन्ध तथा राहित्य से उनके लिए सगुण तथा निर्गुण, साकार तथा निराकार, इस प्रकार का व्यवहार होता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३२॥

द्विजत्वं विध्यनुष्ठानाद् विप्रत्वं वेदपाठतः ।
ब्रह्मण्यं ब्रह्मविज्ञानादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥३३॥

यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण-रूप विधि के अनुष्ठान से द्विज बन जाता है। वेद का पाठ करने से विप्र बन जाता है,

परन्तु ब्राह्मण तो तब ही बनता है, जब ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। क्योंकि जो ब्रह्म को जानने की इच्छा रखता है या जिसने ब्रह्म को जान लिया है, उसको ही वेदान्त शास्त्र में यत्र यत्र "ब्राह्मणा विविदिषन्ति" "स ब्राह्मणा......" इत्यादि वाक्यों से कहा गया है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३३॥

सर्वात्मना स्थितं ब्रह्म सर्वं ब्रह्मात्मना स्थितम् ।
न कार्यं कारणाद्भिन्नमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥३४॥

ब्रह्म ही सर्वप्रपञ्चरूप से भासमान है। प्रपञ्च ब्रह्म स्वरूप ही है, क्योंकि कार्य कारण से भिन्न नहीं होता है जैसे घट मिट्टी से कोई अलग पदार्थ नहीं है। मिट्टी से घट की न्याईं, इस आत्मा से ही आकाशादि जगत्प्रपञ्च की सृष्टि हुई; इस बात को श्रुति भगवती "तस्माद्वा वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः......" इत्यादि वचनों से कहती है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३४॥

सत्तास्फुरणसौख्यानि भासन्ते सर्ववस्तुषु ।
तस्माद् ब्रह्ममयं सर्वमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥३५॥

इस जगत्प्रपञ्च का उपादान कारण भी ब्रह्म ही है; इसका एक प्रमाण यह भी है कि संसार के सर्वपदार्थों में सत्ता, स्फूर्ति और सुखरूपता का भान होता है वह अस्ति-भाति-प्रियरूपता कार्य जगत्प्रपञ्च में कारण ब्रह्म से ही आई है, क्योंकि कारण के गुण ही कार्य के गुण को आरम्भ करते हैं। कपड़े के लाल रङ्ग का कारण सूत का लाल रङ्ग ही है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि सारा जगत्प्रपञ्च ब्रह्म का ही विवर्त कार्य है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३५॥

अवस्थात्रितयं यस्य क्रीडाभूमितया स्थितम् ।
तदेव ब्रह्म जानीयादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥३६॥

जो चैतन्यदेव जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीररूप उपाधियों से युक्त होकर विश्व, तैजस और प्राज्ञ बन कर नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं; उनको ही ब्रह्म करके जानना चाहिए। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३६॥

यन्नादौ यच्च नास्त्यन्ते तन्मध्ये भातमप्यसत् ।
अतो मिथ्या जगत् सर्वमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥३७॥

जो पदार्थ आदि में या अन्त में नहीं रहता है, उस पदार्थ का भान यदि बीच में हो भी जाय, तब भी उस पदार्थ को असत् ही समझना, जैसे स्वप्न के पदार्थ को असत् करके जानते हो। इसलिये आदि तथा अन्त में नहीं रहने के कारण यह जगत् प्रपञ्च भी मिथ्या ही है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३७॥

यदस्त्यादौ यदस्त्यन्ते यन्मध्ये भाति तत्स्वयम् ।
ब्रह्मैवैकमिदं सत्यमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥३८॥

जो पदार्थ आदि में भी रहता है, अन्त में भी रहता है और जिस पदार्थ का भान मध्य में भी होता है, वह पदार्थ स्वयं ब्रह्म ही है और वह एक अद्वितीय सत्य पदार्थ है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३८॥

पुरुषार्थत्रयाविष्टाः पुरुषाः पशवो ध्रुवम् ।
मोक्षार्थी पुरुषः श्रेष्ठ इति वेदान्तडिण्डिमः ॥३९॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार प्रकार के पुरुषार्थ हैं। इनमें से जो पुरुष केवल पहिले तीनों में ही अभिनिवेश रखते हैं, उनकी प्राप्ति के लिए ही कोशिश करते रहते हैं, वे तो वास्तव में पशु ही हैं क्योंकि उन्होंने अमूल्य मनुष्य जीवन को प्राप्त करके भी मोक्ष के लिए इस जीवन का उपयोग नहीं किया। इसलिए मोक्ष की इच्छा रखने वाले और इसके लिए प्रयत्न करने वाले पुरुष ही श्रेष्ठ हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥३९॥

घटकुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च।
तथा ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४०॥

जिस प्रकार घट, दीवार इत्यादि मिट्टी का कार्य होने से मिट्टी ही है, उससे अलग कोई पदार्थ नहीं, इसी प्रकार यह सारा जगत् ब्रह्म का ही विवर्त कार्य होने से ब्रह्म स्वरूप ही है; उससे भिन्न नहीं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४०॥

षण्निहत्य त्रयं हित्वा द्वयं भित्त्वाऽखिलातिगम्।
एकं बुद्ध्वाऽश्नुते मोक्षमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४१॥

काम, क्रोधादि छः रिपुओं को दमन करके, पुत्र की इच्छा, धन की इच्छा, स्वर्गादि लोक की इच्छा, इन तीनों इच्छाओं को (एषणाओं को) त्याग करके, जीवत्व और ईश्वरत्व को भागत्यागलक्षणा द्वारा दूर करके, संसार के दृश्य सब पदार्थों से परे जो एक अद्वितीय परम तत्त्व है; उसका साक्षात्कार करके जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४१॥

भित्त्वा षट् पञ्च भित्त्वाऽथ भित्त्वाऽथ चतुरस्त्रिकम् ।
द्वयं हित्वाऽऽश्रयेदेकमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४२॥

जन्म-मृत्यु, भूख और प्यास, शोक और मोह—इनको शास्त्रों में षड्-ऊर्मि शब्दों से कहा गया है—इनमें जन्म और मृत्यु तो स्थूल शरीर के धर्म हैं, भूख और प्यास प्राणों का धर्म है तथा शोक और मोह अन्तःकरण के धर्म हैं; परन्तु जीव अज्ञानवश इनको आत्मा के धर्म मान लेते हैं। इन षड् ऊर्मियों को नाश करके अर्थात् ये अनात्मपदार्थों के ही धर्म हैं, इस प्रकार जान कर तथा पञ्च-कोशों को भेदन करके, चारों वर्ण तथा चारों आश्रमों के धर्मों से रहित जानकर, तीनों शरीरों से परे है, यह निश्चय कर बाह्य तथा आन्तर ये दोनों प्रपञ्च को त्याग कर, देश-काल वस्तु परिच्छेद से रहित एक अद्वितीय आत्मदेव का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४२॥

देहो नाहमहं देही (देवो) देहसाक्षीति निश्चयात् ।
जन्ममृत्युप्रहीणोऽसाविति वेदान्तडिण्डिमः ॥४३॥

मैं देह नहीं हूँ बल्कि देह का साक्षी मैं देही आत्मा हूँ; इस प्रकार निश्चय हो जाने पर वह जीव जन्म तथा मृत्यु को जय कर लेता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४३॥

प्राणो नाहमहं देवः प्राणसाक्षीति निश्चयात् ।
क्षुत्पिपासोपशान्तिः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४४॥

मैं प्राण नहीं हूँ, परन्तु प्राण का साक्षी आत्मदेव हूँ, इस प्रकार निश्चय से जीव भूख तथा प्यास के अध्यास से रहित हो जाता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४४॥

मनो नाहमहं देवो मनः साक्षीति निश्चयात् ।
शोकमोहापहानिः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४५॥

मैं मन नहीं हूँ, परन्तु मन का साक्षी आत्मदेव हूँ, "येनाहुर्मनो मतम्"—इत्यादि केनोपनिषद् की श्रुतियाँ इस बात को ही कहती हैं कि मेरी स्फूर्ति से, मेरी सत्ता से ही मन सत्ता-स्फूर्ति से युक्त होता है। इस प्रकार मन का साक्षी करके आत्मदेव को जिसने निश्चित जान लिया उसके शोक तथा मोह नष्ट हो जाते हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४५॥

बुद्धिर्नाहमहं देवो बुद्धि-साक्षीति निश्चयात् ।
कर्तृभावनिवृत्तिः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४६॥

मैं निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं हूँ, अपितु बुद्धि का साक्षी अर्थात् इसके भिन्न भिन्न परिणाम को प्रकाश करने वाला आत्मदेव हूँ, इस प्रकार जिनका संशयरहित निश्चय है, उनके कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि भाव का नाश हो जाता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४६॥

नाज्ञानं स्यामहं देवोऽज्ञानसाक्षीति निश्चयात् ।
सर्वानर्थनिवृत्तिः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४७॥

मैं अज्ञानरूप कारण शरीर नहीं हूँ, मै तो अज्ञान का साक्षी, उसको सत्ता-स्फूर्ति देने वाला आत्मदेव हूँ, इस प्रकार जिसका दृढ़ निश्चय हो गया, उसके सर्व प्रकार के अनर्थ की निवृत्ति हो जाती है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४७॥

अहं साक्षीति यो विद्याद्विच्यैवं पुनः पुनः ।
स एव मुक्तोऽसौ विद्वानिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४८॥

मैं तो साक्षी हूं, इस प्रकार जिसने अपने को बार-बार विचार द्वारा जान लिया; वही पुरुष मुक्त है और विद्वान है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४८॥

नाहं माया न तत्कार्यं न साक्षी परमोऽस्म्यहम् ।
इति निःसंशयज्ञानान्मुक्तिर्वेदान्तडिण्डिमः ॥४९॥

न तो मैं माया हूँ, न तो इसका कार्य हूँ, न तो मैं माया का और इसके कार्य का साक्षी हूँ; क्योंकि यदि परमार्थतः माया कोई वस्तु होती तब तो वह मेरा साक्ष्य और मैं उसका साक्षी बनता परन्तु माया तो शास्त्रदृष्टि से तुच्छ अर्थात् मिथ्या है, इसलिए मैं इसका साक्षी भी नहीं हूँ, मैं तो एक मात्र परम तत्त्व स्वरूप हूँ, ऐसा सन्देहरहित अपरोक्षज्ञान जिनका है, उनकी ही मुक्ति होती है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥४९॥

नाहं सर्वमहं सर्वं मयि सर्वमिति स्फुटम् ।
ज्ञाते तत्त्वे कुतो दुःखमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥५०॥

वस्तुतः यह सारा प्रपञ्च मुझसे भिन्न है, क्योंकि यह असत् जड़ दुःखस्वरूप है और मैं सत् चित् आनन्दस्वरूप हूँ, परन्तु यह कल्पित है और मैं अधिष्ठान हूँ, कल्पित पदार्थों की अधिष्ठान से भिन्न सत्ता नहीं होती। इसलिए ये सब कुछ मैं ही हूँ, यह प्रपञ्च मेरे में ही स्थित है; इस प्रकार स्पष्ट जिसको परम तत्त्व का ज्ञान हो गया, उसके लिए दुःख कहाँ से आ सकता है। यह ही वेदन्त की घोषणा है ॥५०॥

देहादिपञ्चकोशस्था या सत्ता प्रतिभासते ।
सा सत्तात्मा न सन्देह इति वेदान्तडिण्डिमः ॥५१॥

स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण; इन तीनों देहों में ही अन्नमयादि पञ्चकोशों का अन्तर्भाव है । इन पञ्चकोशों में "अस्ति" अर्थात् अन्नमय कोश "है", प्राणमय कोश "है", इस प्रकार जिस सत्ता की प्रतीति होती है, वह सत्ता ही आत्मा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५१॥

देहादिपञ्चकोशस्था या स्फूर्तिरनुभूयते ।
सा स्फूर्तिरात्मा नैवान्यदिति वेदान्तडिण्डिमः ॥५२॥

देहादि पञ्चकोशों में स्थित जो स्फूर्ति—जिस स्फूर्ति की "पञ्चकोशों का मुझे भान हो रहा है" इस प्रकार से प्रतीति होती है, वह स्फूर्ति ही आत्मदेव है; इससे भिन्न कोई आत्मा नहीं है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५२॥

देहादिपञ्चकोशस्था या प्रीतिरनुभूयते ।
सा प्रीतिरात्मा कूटस्थ इति वेदान्तडिण्डिमः ॥५३॥

देहादि पञ्चकोशों में "यह देहादि मेरे प्रिय हैं"—इस रूप से जो आनन्द का अनुभव होता है, वह आनन्द ही कूटस्थ आत्मा है। यह वेदान्त की घोषणा है ॥५३॥

व्योमादिपञ्चभूतस्था या सत्ता भासते नृणाम् ।
सा सत्ता परमं ब्रह्म इति वेदान्तडिण्डिमः ॥५४॥

आकाशादि पञ्चभूतों में 'आकाश है' इस रूप से जो सत्ता का ज्ञान जीवों को होता है, वह सत्ता ही परम ब्रह्म है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५४॥

व्योमादिपञ्चभूतस्था या चिदेकानुभूयते ।
सा चिदेव परं ब्रह्म इति वेदान्तडिण्डिमः ॥५५॥

आकाशादि पञ्चभूतों में आकाशादि का "भान" हो रहा है, इस रूप से जो एक प्रकाशात्मक चैतन्य की प्रतीति होती है; वह चैतन्य ही परब्रह्म है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५५॥

व्योमादिपञ्चभूतस्था या प्रीतिरनुभूयते ।
सा प्रीतिरेव ब्रह्म स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥५६॥

आकाशादि पञ्चभूतों में जो आनन्द का अनुभव होता है, वह आनन्द ही ब्रह्म का स्वरूप है। उपर्युक्त तीनों श्लोकों से यह ही कहा गया है कि भूत-प्रपञ्च में जो अस्ति-भाति-प्रियता का ज्ञान होता है, वह जड़ प्रपञ्च का नहीं, परन्तु अधिष्ठान परब्रह्म का ही है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५६॥

देहादिकोशगा सत्ता या सा व्योमादिभूतगा ।
मानाभावान्न तद्भेद इति वेदान्तडिण्डिमः ॥५७॥

देहादि कोशों में जिस सत्ता का अनुभव होता है तथा आकाशादि पञ्च भूतों में जिस सत्ता का अनुभव होता है, इन दोनों में भेद है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है, अर्थात् दोनों में एक ही सत्ता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५७॥

देहादिकोशगा स्फूर्तिर्या सा व्योमादिभूतगा ।
मानाभावान्न तद्भेद इति वेदान्तडिण्डिमः ॥५८॥

देहादि पञ्च कोशों में जो स्फूर्ति अर्थात् प्रकाश है, वह ही प्रकाश आकाशादि भूतों में है, देह की स्फूर्ति पञ्च भूतों की स्फूर्ति से भिन्न है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५८॥

देहादिकोशगा प्रीतिर्या सा व्योमादिभूतगा।
मानाभावान्न तद्भेद इति वेदान्तडिण्डिमः ॥५९॥

देहादि कोशों में जो आनन्द है, वह ही आनन्द आकाशादि पञ्चभूतों में है, इन दोनों आनन्दों में भेद है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥५९॥

सच्चिदानन्दरूपत्वाद्ब्रह्मैवात्मा न संशयः।
प्रमाणकोटिसन्धानादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६०॥

प्रत्यगात्मा अर्थात् जीवात्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है और परब्रह्म अर्थात् परमात्मा भी सच्चिदानन्दस्वरूप है इस हेतु से तथा अनेक श्रुतिवाक्यों से सिद्ध होता है कि जीव ब्रह्म ही है, इसमें कोई संशय नहीं है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६०॥

न जीवब्रह्मणोर्भेदः सत्तारूपेण विद्यते।
सत्ताभेदे न मानं स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६१॥

यदि कोई कहे कि जीवात्मा भी सत्‌रूप है, ब्रह्म भी सत् स्वरूप है, परन्तु दोनों सत् स्वरूप होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न हैं, जैसे देवदत्त और यज्ञदत्त दोनों देहधारी होते हुए भी भिन्न हैं। इसका समाधान यह है कि देवदत्त और यज्ञदत्त का देह तो भिन्न-भिन्न है, इसलिए उनमें अर्थात्

इन दोनों देहधारियों में भेद बन सकता है परन्तु जीव जिस प्रकार सत्तारूप है ब्रह्म भी सत्तारूप है। इसलिए सत्तारूप से इन दोनों में कोई भेद नहीं है, क्योंकि सत्ता भिन्न भिन्न है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६१॥

न जीवब्रह्मणोर्भेदः स्फूर्तिरूपेण विद्यते ।
स्फूर्तिभेदे न मानं स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६२॥

जैसा पहिले श्लोक में कहा गया है, इसी प्रकार स्फूर्तिरूप से भी जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है क्योंकि स्फुरण भिन्न भिन्न है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६२॥

न जीवब्रह्मणोर्भेदः प्रियरूपेण विद्यते ।
प्रियभेदे न मानं स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६३॥

इसी प्रकार आनन्दरूप से भी जीव और ब्रह्म का भेद नहीं है, क्योंकि आनन्द भिन्न भिन्न है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६३॥

न जीवब्रह्मणोर्भेदो नाम्ना रूपेण विद्यते ।
नाम्नो रूपस्य मिथ्यात्वादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६४॥

यदि द्वैतवादी कहे कि सत्तादि लेकर भले ही जीव और ब्रह्म में भेद न हो परन्तु "जीव" यह नाम, "ब्रह्म" इस नाम से भिन्न है और जीव तो "प्रत्यगात्मा" है और ब्रह्म "परात्मा" है यह दोनों रूप भी भिन्न हैं। इन नामरूपों की दृष्टि से जीव और ब्रह्म में भेद है, तो यह बात भी ठीक नहीं

है, क्योंकि यह नाम और रूप तो मिथ्या है, कल्पित है; कल्पित नाम रूप को लेकर जीव और ब्रह्म में भेद नहीं बन सकता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६४॥

न जीवब्रह्मणोर्भेदः पिण्डब्रह्माण्डभेदतः ।
व्यष्टेः समष्टेरेकत्वादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६५॥

इस प्रकार व्यष्टिदेह और ब्रह्माण्डरूप समष्टिदेह लेकर भी जीव और ब्रह्म का भेद नहीं हो सकता है, क्योंकि व्यष्टि और समष्टि तो एक ही है। समष्टि तो व्यष्टि से ही बनती है। समष्टि से एक-एक करके व्यष्टि को निकाल लेने से समष्टि ही नहीं रहती है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६५॥

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः ।
जीवन्मुक्तस्तु तद्विद्वानिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६६ ।

ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्मस्वरूप ही है, उससे भिन्न नहीं है, इस प्रकार जिनको अपरोक्ष साक्षात्कार हो गया, वह पुरुष जीवन्मुक्त है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६६॥

न नामरूपे नियते सर्वत्र व्यभिचारतः ।
अनात्मरूपं सर्वं स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६७॥

नाम और रूप हमेशा एक रूप में रहने वाले नहीं है, सर्वत्र उनका व्यभिचार दिखने में आता है। "दूध" नाम और रूप बदल कर "दही" यह नाम और रूप बन जाते हैं, "दही" से "मक्खन" उससे "घी" इस प्रकार परिवर्तन होता रहता

है। ये नाम और रूप सब अनात्म पदार्थ हैं, मिथ्या हैं। अस्ति-भाति-प्रियरूप से जो अविकृत पदार्थ का अनुभव होता है, उसमें आरोप किया जाता है; सत्य पदार्थ तो उन कल्पित पदार्थों का अधिष्ठान नाम रूप रहित तत्त्व ही है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६७॥

अनामरूपं सकलं सन्मयं चिन्मयं परम् ।
कुतो भेदः कुतो बन्ध इति वेदान्तडिण्डिमः ॥६८॥

इसलिए परमार्थतः सब कुछ नाम और रूप से रहित है, सत्-स्वरूप है, चित्-स्वरूप है। इसलिए पदार्थों में भेद कहाँ से आ सकता है, कोई बद्ध और कोई मुक्त है यह बात भी कैसे बन सकती है ? यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६८॥

न तत्त्वात् कथ्यते लोको नामाद्यैर्व्यभिचारतः ।
बटुर्जरठ इत्याद्यैरिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६९॥

नाम और रूप का सदा परिवर्तन होता रहता है। इसलिए लोक में "यह बालक है" और "यह वृद्ध है" इस प्रकार जो व्यवहार होता है; वह व्यवहार पारमार्थिक दृष्टि से नहीं होता है क्योंकि जिस शरीर को "बटु" कहा जाता है वह शरीर ही आगे जाकर "जरठ" बन जाता है, परन्तु उसका अधिष्ठानभूत चैतन्य तो विकारहीन ही रह जाता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६९॥

नामारूपात्मकं विश्वमिन्द्रजालं विदुर्बुधाः ।
अनात्मत्वादयुक्तत्वादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥७०॥

यह नामरूपात्मक विश्व अनात्म वस्तु है, और अनिर्वचनीय है, अर्थात् सत् है, या असत् है, या सदसत् उभयरूप

है, इसका युक्ति से निर्णय नहीं हो सकता है, इसलिये विद्वान् लोग इस विश्व को मायावी की माया के जैसा जानते हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ।।७०।।

अभेददर्शनं मोक्षः संसारो भेददर्शनम् ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्त इति वेदान्तडिण्डिमः ।।७१।।

अभेद दर्शन ही मोक्ष है और भेद दर्शन ही संसार अर्थात् बन्धन है। यह ही सारे वेदान्त शास्त्र का सिद्धान्त है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ।।७१।।

न मताभिनिवेशित्वान्न भाषावेशमात्रतः ।
मुक्तिर्विनात्मविज्ञानादिति वेदान्तडिण्डिमः ।।७२।।

केवल किसी विशेष मत में ही आग्रह रखने से, या किसी भाषा विशेष में आग्रह रखने से अथवा केवल चर्चा और वेशभूषा से ही मुक्ति नहीं हो सकती, यदि आत्मा का साक्षात्कार न हो। "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती, "ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः" उन परमदेव को जानने से सर्व संसारबन्धन का नाश हो जाता है—इत्यादि वाक्य ही इसमें प्रमाण है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ।।७२।।

न काम्यप्रतिषिद्धाभिः क्रियाभिर्मोक्षवासना ।
ईश्वरानुग्रहात्सा स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ।।७३।।

काम्य या निषिद्ध कर्मादियों के अनुष्ठान से मोक्ष की इच्छा नहीं उत्पन्न होती, मुमुक्षुता तो ईश्वर के अनुग्रह से ही उत्पन्न होती है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ।।७३।।

अविज्ञाते जन्म नष्टं विज्ञाते जन्म सार्थकम् ।
ज्ञातुरात्मा न दूरे स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥७४॥

इस मनुष्य जन्म को प्राप्त करके यदि आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया तो समझो कि यह जन्म व्यर्थ हो गया, और यदि आत्मा का साक्षात्कार हो गया, तब ही जन्म लेना सार्थक हुआ। श्रुति भगवती भी कहती है कि— "इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः" "इस मनुष्य शरीर में यदि आत्मा को जान लिया, तब तो शरीर प्राप्त करना सफल हुआ, और यदि आत्मा को नहीं जाना तो पुनः पुनः जन्म-मरणादि प्राप्तिरूप महान् दुःख का भागी बनना पड़ेगा"। जानने के योग्य वह आत्मा जानने वाले से दूर नहीं है, जिससे कि वह दुर्विज्ञेय हो। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥७४॥

दशमस्य परिज्ञाने नायासोऽस्ति यथा तथा ।
स्वस्य ब्रह्मात्मविज्ञाने इति वेदान्तडिण्डिमः ॥७५॥

जिस प्रकार दशम पुरुष को "दशवाँ है" इस वचन सुनने के बाद अपने को, "मैं ही दशवाँ पुरुष हूँ" इस प्रकार जानने में कोई अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती है, इसी प्रकार अधिकारी पुरुष को भी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के मुखारविन्द से "तत्त्वमसि" इत्यादि महावाक्य श्रवण के अनन्तर अपने को ही ब्रह्म करके अनुभव करने में कोई अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं रहती। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥७५॥

उपेक्ष्यौपाधिकान् दोषान् गृह्यन्ते विषया यथा ।
उपेक्ष्य दृश्यं यद् ब्रह्म इति वेदान्तडिण्डिमः ॥७६॥

आकाश में नीलरूप की प्रतीति होती है, परन्तु वह नीलरूप आकाश का नहीं है, सूर्य की किरणों का है, आकाश में सूर्य की किरण-रूप उपाधि के सम्बन्ध से आरोपित हुआ है। जैसा उस औपाधिक नीलिमा को कल्पित मान कर आकाश को नीरूप करके विद्वान् लोग जानते हैं, उसी प्रकार कल्पित दृश्य पदार्थों को निरादर करके केवल अधिष्ठानरूप जो ब्रह्म है—उनका ही ग्रहण करना चाहिए। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥७६॥

सुखमल्पं बहुक्लेशो विषयग्राहिणां नृणाम् ।
अनन्तं ब्रह्मनिष्ठानामिति वेदान्तडिण्डिमः ॥७७॥

विषय को भोग करने वाले पुरुषों का सुख तो क्षणिक और थोड़ा सा ही होता है और उनका दुःख तो बहुत होता है, परन्तु ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों का सुख तो नित्य और निरतिशय होता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥७७॥

धनैर्वा धनदैः पुत्रैर्दारागारसहोदरैः ।
ध्रुवं प्राणहरैर्दुःखमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥७८॥

प्राणों को हरण करने वाले पदार्थों से जितना दुःख जीव को प्राप्त होता है, इतना ही दुःख धन से, या धन देने वाले पुत्रों से, या गृह-गृहिणी और भाईयों से अवश्य ही जीव को मिलता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥७८॥

सुप्तेरुत्थाय सुप्त्यन्तं ब्रह्मैकं प्रविचिन्त्यताम् ।
नातिदूरे नृणां मृत्युरिति वेदान्तडिण्डिमः ॥७९॥

प्रातःकाल में निद्रा से जागने से लेकर रात्रि में पुनः निद्रा को प्राप्त करने तक सारे समय को केवल एक परब्रह्म के चिन्तन में ही लगा देना चाहिए, क्योंकि मनुष्य की मृत्यु दूर नहीं है, प्रतिदिन समीप ही आ रही है। इसलिए संसार के पदार्थों की वासनाओं को मन में स्थान नहीं देकर ब्रह्मचिन्तन में ही समय व्यतीत करते रहना चाहिए। इसीलिए ही अन्यत्र कहा गया है कि—

आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद् वेदान्तचिन्तया।
दद्यान्नावसरं किञ्चित् कामादीनां मनागपि॥

हे जीव ! जब तक रात्रि में सुषुप्ति के गोद में नहीं चले जाते हो, या जब तक मृत्यु इस शरीर को ग्रास नहीं कर लेती, तब तक सारे समय को वेदान्त के चिन्तन में ही बिताना चाहिए, विषयवासनादियों को मन में जागृत होने का तनिक सा मौका भी नहीं देना चाहिए। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥७९॥

पञ्चानामपि कोशानां मायानर्थव्ययोचिता ।
तत्साक्षीब्रह्मविज्ञानमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥८०॥

यदि ब्रह्मरूप चैतन्य जो माया का भी साक्षी है, उनका साक्षात्कार पञ्चकोशों के विवेक द्वारा उनका अधिष्ठानरूप से हो जावे तो ही पञ्चकोशों की सृष्टि सार्थक है, नहीं तो यह माया या अविद्या तो पञ्चकोशों की सृष्टि को व्यर्थ करने वाली है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८०॥

दशमत्वपरिज्ञाने नवज्ञस्य यथासुखम् ।
तथा जीवस्य सत्प्राप्ताविति वेदान्तडिण्डिमः ॥८१॥

"दशवाँ का" ज्ञान हो जाने पर, "हम नौ हैं" इस प्रकार पहिले जानने वाले को जैसे अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है, इसी प्रकार आनन्द का अनुभव जीव को होता है, जब वह अपने को ही सच्चिदानन्द करके जान लेता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८१॥

नवभ्योऽस्ति परं प्रत्यङ् न वै वेद परं परम् ।
तद्विज्ञानाद्भवेत्तुर्या मुक्तिर्वेदान्तडिण्डिमः ॥८२॥

वागादि पञ्च श्रवणादि पञ्च
प्राणादिपञ्चाभ्रमुखानि पञ्च ।
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी
पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः ॥

वागादि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, श्रवणादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणादि पञ्च प्राण, आकाशादि पाँच भूत, बुद्धि आदि अन्तःकरण चतुष्टय, अविद्या तथा काम और कर्म यह पुर्यष्टक अथवा सूक्ष्म शरीर कहा जाता है। मृत्यु के अनन्तर यह पुर्यष्टक इस स्थूल देह से निकल कर नये स्थूल देह में प्रवेश करता है।

पुर्यष्टक और स्थूल देह इस नौ प्रकार के संसार से परे वह प्रत्यगभिन्न परमात्मा है, परन्तु अज्ञानी जीव उन परमात्मदेव को नहीं पहचानता है। उनको जान लेने से ही तुर्या रूप मुक्ति होती है। यद्यपि मुक्ति तो साधारणतः दो प्रकार की ही मानी गई है, जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति, तथापि दृष्ट सुख के और विक्षेपराहित्य के तारतम्यानुसार ज्ञानप्राप्ति के अनन्तर भी योगवासिष्ठादि ग्रन्थों में जो चार भूमिकायें मानी गई और जिन भूमिकाओं में आरूढ़ विद्वानों को ब्रह्मवित्, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरीयान् और ब्रह्मविद्वरिष्ठ इन शब्दों से

कहा गया है, उन भूमिकाओं को लेकर ही यहाँ मुक्ति को भी "तुर्य" अर्थात् चतुर्थ कहा गया है। कठोपनिषद् में भी "यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः" इत्यादि श्रुतियों से इन भूमिकाओं का ही उल्लेख किया गया है। "तुर्या" मुक्ति का यह ही मतलब है कि ब्रह्माभ्यास द्वारा मनोनाश तथा वासनाक्षयपूर्वक नित्य निरतिशय-आनन्दरूप स्थिति में विद्वान् रह जाता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८२॥

नवाभासानवज्ञत्वान्नवोपाधीन्नवात्मना ।
मिथ्या ज्ञात्वाऽवशिष्टे तु मौनं वेदान्तडिण्डिमः ॥८३॥

पूर्व श्लोक में कहे गये उस नवधा संसार को, अज्ञानी जीव प्रत्यगभिन्नपरात्मा से भिन्नतया जानता है, इसलिए अर्थात् आत्मा से भिन्न होने से वे नौ प्रकार के संसार आभास ही हैं। उन नौ उपाधियों को, "नवात्मना"—अनादिकाल से अन्तःकरण में पड़े हुए मल विक्षेपादियों को, निष्काम कर्म तथा उपासना द्वारा दूर करके नये अर्थात् शुद्ध निर्मल निर्विक्षेप चित्त से "नेति" "नेति" इत्यादि श्रुति प्रमाणों से मिथ्या कल्पित जानकर, अवशिष्ट अधिष्ठान, जो बाध की अवधि रूप से बाकी रह जाता है, उनके बारे में जीव को मौन हो जाना चाहिए, क्योंकि वह अधिष्ठानरूप परमात्मा तो मन या वाणी का विषय ही नहीं बनता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८३॥

परमे ब्रह्मणि स्वस्मिन् प्रविलाप्याऽखिलं जगत् ।
गायन्नद्वैतमानन्दमास्ते वेदान्तडिण्डिमः ॥८४॥

परमात्मा परब्रह्म जो अपना ही स्वरूप है उसमें सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् को प्रविलापन अर्थात् लय करके अद्वैत

आनन्द का कीर्तन करता हुआ विद्वान् स्वरूप में स्थित रहता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८४॥

प्रतिलोमाऽनुलोमाभ्यां विश्वारोपापवादयोः ।
चिन्तने शिष्यते तत्त्वमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥८५॥

निष्प्रपञ्च परब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करना हो तो अध्यारोप और अपवादपूर्वक ही करना सरल होता है। इसलिए अनुलोम अर्थात् आकाशादि क्रम से इस प्रपञ्च को ब्रह्म में ही उत्पन्न और स्थित मान कर पश्चात् प्रतिलोम यानी सृष्टि के विपरीत क्रम से इसका अपवाद कार्यों को अपने कारणों में लय के चिन्तन से अन्त में तत्त्वरूप परमात्मा ही अवशिष्ट रह जाते हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८५॥

नामरूपाभिमानः स्यात् संसारः सर्वदेहिनाम् ।
सच्चिदानन्ददृष्टिः स्यान्मुक्तिर्वेदान्तडिण्डिमः ॥८६॥

इस नाम-रूपात्मक प्रपञ्च में सत्यत्वबुद्धि कर लेना ही जीवों के लिए संसार अर्थात् बन्ध है, और सर्वत्र सच्चिदानन्द दृष्टि ही उनके लिए मुक्ति है। तात्पर्य यह है कि जीव मिथ्या देहादि पदार्थों में तादात्म्याभिमान करके अपने को जन्म-मृत्युरूप संसार से बद्ध समझ लेता है, प्रपञ्च में मिथ्यात्व का दृढ़ निश्चय और सर्वत्र "अस्ति-भाति-प्रियरूप से" आत्मदृष्टि से ही वह संसारबन्धन टूट जाता है और अपने को "मैं मुक्त हूँ" इस प्रकार जान लेता है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८६॥

सच्चिदानन्दसत्यत्वे मिथ्यात्वे नामरूपयोः ।
विज्ञाते किमिदं ज्ञेयमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥८७॥

सच्चिदानन्दरूप पदार्थ ही वस्तुतः सत्य है और ये नाम-रूप मिथ्या है, इस तत्त्व को जान लेने पर और अन्य जानने के योग्य कौन अवशिष्ट रह जाता है? अर्थात् सब कुछ ज्ञात हो जाता है। "येन विज्ञातेन सर्वमिदं विज्ञातं स्यात्"—इत्यादि श्रुति इसमें प्रमाण है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८७॥

सालम्बनं निरालम्बं सर्वालम्बावलम्बितम् ।
आलम्बेनाखिलालम्बमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥८८॥

शिव, विष्णु, ॐकार इत्यादि प्रतीकों से उस निर्विशेष प्रतीकहीन ब्रह्म का ही चिन्तन होता है, सर्व प्रतीकों का बीजभूत-आश्रय ब्रह्म ही है। एक उनके आलम्बन से ही सारे प्रतीकों का ग्रहण हो जाता है, क्योंकि प्रतीक तो नामरूपात्मक होने से उनमें ही कल्पित है, इसलिए उनसे अभिन्न हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥८८॥

न कुर्यान्न विजानीयात् सर्वं ब्रह्मेत्यनुस्मरन् ।
यथा सुखं तथा तिष्ठेदिति वेदान्तडिण्डिमः ॥८९॥

ब्रह्मसाक्षात्कार के अनन्तर विद्वान् का करने योग्य कोई कार्य, या जानने योग्य कोई वस्तु नहीं रह जाती है। वे तो "सब कुछ ब्रह्म ही है" इस प्रकार सदा स्मरण करते हुए जहाँ खुशी आनन्द से विचरण करते रहें। यही वेदान्त की घोषणा है ॥८९॥

स्वकर्मपाशवशगः प्राज्ञोऽन्यो वा जनो ध्रुवम् ।
प्राज्ञः सुखं नयेत् कालमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥९०॥

ब्रह्मवेत्ता या उनसे भिन्न अज्ञानी, सब मनुष्य अपने पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के बन्धन के अधीन हैं—

अभिप्राय यह है कि ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, प्रारब्ध कर्म के फल का भोग तो सबको करना पड़ता है; परन्तु ज्ञानी पुरुष अपने को असङ्ग कूटस्थस्वरूप करके जानते हैं—इसलिए स्वरूपानन्द का अनुभव करते हुए सुख से काल बिताते हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६०॥

न विद्वान् सन्तपेच्चित्तं करणाकरणे ध्रुवम् ।
सर्वमात्मेति विज्ञानादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६१॥

सब कुछ आत्मा ही है—इस प्रकार दृढ़ निश्चय हो जाने के अनन्तर क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है इस विषय को लेकर विद्वान् अपने चित्त को उद्विग्न या दुःखी नहीं करते हैं। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६१॥

नैवाभासं स्पृशेत्कर्म मिथ्योपाधिमपि स्वयम् ।
कुतोऽधिष्ठानमत्यच्छमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥६२॥

अन्तःकरण रूप उपाधि में जो चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसका नाम चिदाभास है। अन्तःकरण मिथ्या माया का कार्य होने से स्वयं भी मिथ्या ही है। इस मिथ्या उपाधि के सम्बन्ध से उत्पन्न कल्पित चिदाभास के साथ भी जब कोई कर्म का साक्षात्सम्बन्ध नहीं है, अन्तःकरण का कर्तृत्व भोक्तृत्व ही इसमें प्रतीत होते हैं, तो स्वभावतः ही अविद्यादि मलरहित शुद्ध अधिष्ठानात्मक चैतन्य से कर्मों का सम्बन्ध कैसे हो सकता है—अर्थात् नहीं होता है। वह तो असङ्ग शुद्धस्वरूप है। यह ही वेदान्त की घोषणा है ॥६२॥

अहोऽस्माकमलं मोहैरात्मा ब्रह्मेति निर्भयम् ।
श्रुतिभेरीरवोऽद्यापि श्रूयते श्रुतिरञ्जनः ॥६३॥

जीव और ब्रह्म के अभेद के अपरोक्ष अनुभव से दुःख

की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति हो जाने पर विद्वान् को जो अनुभूति होती रहती है इसका आभास ग्रन्थकर्ता ने इस श्लोक में दिया कि—अब हम और मोह में फंस नहीं सकते हैं, क्योंकि "आत्मा ही ब्रह्म है" इस श्रुतिमधुर वेद-दुन्दुभि-निनाद को आज भी हम निर्भय होकर सुन रहे हैं। आत्मा के वास्तव स्वरूप को नहीं जानना ही तो मोह का कारण है ॥६३॥

वेदान्तभेरीझङ्कारः प्रतिवादिभयङ्करः ।
श्रूयतां ब्राह्मणैः श्रीमद्दक्षिणामूर्त्यनुग्रहात् ॥६४।

स्वरूपतः सदाशिव शुद्ध चैतन्यस्वरूप ही हैं, अपनी मायारूप उपाधि से युक्त होकर श्रीमद् - दक्षिणामूर्तिरूप से जगत् की सृष्ट्यादि तथा भक्तजनों के जपध्यानादियों का कारण बनते हैं, उन श्रीमद्-दक्षिणामूर्ति भगवान् शंकर की कृपा से मुमुक्षुजन अद्वैतवादियों के लिए श्रुतिमधुर, परन्तु भेदवादियों के लिए अति भयङ्कर, इस वेदान्तदुन्दुभि-ध्वनि को श्रवण करते हैं। यह ही परम कल्याण का साधन है ॥६४॥

सानुवादानधीत्यैतान्
विचार्य च पुनः पुनः ।
वेदान्तडिण्डिमश्लोकान्
मुमुक्षुः प्राप्नुयान्मुदम् ॥

॥ इति शम् ॥

—०—

मुद्रक:—
श्री कैलास विद्या प्रेस, ब्रह्मानन्द आश्रम
हृषीकेश (देहरादून) उ०प्र०